एस.एस. निज्जर के समक्ष

कुलपति, कुरूक्षेत्र का प्रबंधन
कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय – याचिकाकर्ता

बनाम

पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, अम्बाला एवं अन्य-प्रतिवादी

CWP No. 1999 का 6680

24 अगस्त 2001

2 (oo) (bb) 2 (j) & 25-F-भारत का संविधान, *1950*-अनुच्छेद *226*-अनुचित श्रम अभ्यास-लगभग *4* वर्षों की निरंतर सेवा के बाद कुछ काल्पनिक विराम के साथ एक तदर्थ कर्मचारी की सेवाओं की समाप्ति-नियम निर्धारित करते हैं कि कर्मचारी को तब तक नियमित नहीं किया जाएगा जब तक कि वह टाइपिंग टेस्ट में अर्हता प्राप्त नहीं कर लेता है-कर्मचारी सात अवसर दिए जाने के बावजूद टाइप टेस्ट पास करने में विफल रहता है- धारा *25-F* के प्रावधानों का पालन किए बिना समाप्ति-नियम टाइप टेस्ट पास करने के लिए कोई समय सीमा प्रदान नहीं करते हैं-कई अन्य मामलों में पहले से ही टाइप टेस्ट की शर्त में ढील दी गई है- सेवाओं को समाप्त करने वाली प्रबंधन की कार्रवाई भेदभावपूर्ण और शून्य है- मांग सूचना की तारीख से सेवा और पिछले वेतन की निरंतरता के साथ बहाली का निर्देश देने वाले श्रम न्यायालय के निर्णय को बरकरार रखा गया ।

यह अभिनिर्धारित किया गया कि प्रतिवादी-कर्मचारी के साथ उचित व्यवहार नहीं किया गया है। वैधानिक नियम परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए कोई समय सीमा प्रदान नहीं करता है। यह अधिकतम

अवसरों की संख्या भी प्रदान नहीं करता है जिसके भीतर नियुक्त व्यक्ति को टाइपिंग टेस्ट पास करना होगा। किसी व्यक्ति के परीक्षण में उत्तीर्ण नहीं होने की स्थिति में, परिणाम केवल इतना है कि कर्मचारी की सेवाओं को तब तक नियमित नहीं किया जाएगा जब तक कि वह टाइपिंग परीक्षण में अर्हता प्राप्त नहीं कर लेता। इसलिए, इस प्रावधान का उपयोग कामगार की सेवाओं को समाप्त करने के लिए नहीं किया जा सकता है। कुलपति द्वारा पारित 16 मार्च, 1991 के आदेश से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि परीक्षा उत्तीर्ण करने की शर्त में ढील दी जा सकती है। 20 अप्रैल, 1988 को नियुक्त 17 लिपिकों के मामले में छूट की शक्ति का प्रयोग किया गया है । प्रतिवादी संख्या 2 के मामले में इसका प्रयोग नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता-प्रबंधन की यह कार्रवाई स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि कामगार के साथ शत्रुतापूर्ण भेदभाव किया गया है। स्पष्ट रूप से, कर्मचारी की सेवाओं को इस आधार पर समाप्त कर दिया गया है कि वह टाइपिंग टेस्ट पास करने में सक्षम नहीं थी, भले ही उसे सात मौके दिए थे।टाइपिंग टेस्ट में उत्तीर्ण न होने के कारण उनकी सेवाओं को समाप्त करना छंटनी के बराबर है। अधिनियम की धारा 25-F के प्रावधान का अनुपालन नहीं किया गया है। इसलिए, उनकी सेवाओं की समाप्ति शुरू से ही अमान्य है।

(पैरा 15 और 16)

सतीश सिबल, सीनियर अधिवक्ता के साथ वी.एस. राणा, अधिवक्ता, याचिकाकर्ता के लिए

आर.एन. रैना अधिवक्ता प्रतिवादी के लिए

निर्णय

एस.एस. निज्जर, जे.

(1) कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय (बाद में प्रबंधन के रूप में संदर्भित) ने भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के तहत पीठासीन अधिकारी , श्रम न्यायालय , अंबाला द्वारा दिनांक 15 सितंबर 1998 को पारित पुरस्कार जिसमें प्रतिवादी संख्या 2 (इसके बाद कर्मचारी के रूप में संदर्भित) की सेवाओं की समाप्ति को अनुचित और अवैध माना गया है और मांग नोटिस की तारीख से बहाली तक सेवा की निरंतरता और बकाया वेतन के साथ उसकी बहाली का निर्देश दिया गया है, को रद्द करने के लिए सर्टिओरी प्रकृति की रिट की मांग करते हुए, यह रिट याचिका दायर की है।

(2) कर्मचारी को शुरुआत में 19 नवंबर 1985 को कनिष्ठ लिपिक के रूप में नियुक्त किया गया था। नियुक्ति पूरी तरह से छह महीने की अवधि के लिए या नियमित चयन होने तक, जो भी पहले हो, तदर्थ आधार पर थी। इसके बाद कई मौकों पर उन्हें छह महीने की अवधि के लिए तदर्थ आधार पर फिर से नियुक्त किया गया। उन्हें आखिरी बार 3 जून 1989 को नियुक्त किया गया था। उनकी सेवाएं 8 मार्च 1990 को एक आदेश द्वारा समाप्त कर दी गई थीं। नियुक्ति आदेश में कहा गया था कि उनकी सेवा की शर्तें, जहां तक वे नियुक्ति पत्र में निर्दिष्ट नहीं हैं, समय-समय पर लागू विश्वविद्यालय के नियमों द्वारा शासित होंगे। विश्वविद्यालय में विभिन्न पदों के लिए योग्यताएं कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय कैलेंडर खंड III की अनुसूची II में दी गई हैं। कर्मकार के मामले में लागू नियम इस प्रकार हैं:

"21. लिपिक:

(1) (i) मैट्रिकुलेशन/हायर सेकेंडरी/प्री- यूनिवर्सिटी कम से कम द्वितीय श्रेणी में, या इस विश्वविद्यालय से स्नातक या किसी मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय /बोर्ड से समकक्ष योग्यता । या

(ii)(ए) मैट्रिक और (बी) ऑनर्स. हिंदी (प्रभाकर) में या साहित्य रत्न या कोई अन्य समकक्ष परीक्षा या कार्यालय संगठन/ सचिवीय अभ्यास में कम से कम द्वितीय श्रेणी में डिप्लोमा।

(2) टाइपराइटिंग की परीक्षा में कम से कम 30 शब्द प्रति मिनट की गति से उत्तीर्ण होना।

(3) यदि स्नातकों को लिखित परीक्षा में उनकी योग्यता के आधार पर चुना जाता है, तो उन्हें एक वर्ष की अवधि के भीतर 30 शब्द प्रति मिनट की गति से टाइपिंग टेस्ट उत्तीर्ण करना होगा, ऐसा न करने पर वे पुष्टिकरण के लिए पात्र नहीं होंगे जब तक वे टाइपिंग टेस्ट में उत्तीर्ण नहीं हो जाते हैं।

बशर्ते कि आंतरिक उम्मीदवारों के मामले में, जिनके पास इस विश्वविद्यालय में कम से कम तीन साल की अनुमोदित सेवा है, क्रम संख्या 1 पर योग्यता मैट्रिक III डिवीजन तक के लिए छूट योग्य है:

बशर्ते कि तदर्थ आधार पर नियुक्त क्लर्कों को एक वर्ष के भीतर 30 शब्द प्रति मिनट की गति से टाइपराइटिंग में एक परीक्षा उत्तीर्ण करनी होगी, ऐसा न करने पर वे टाइपिंग टेस्ट में उत्तीर्ण होने तक नियमित आधार पर नियुक्ति के लिए पात्र नहीं होंगे। ”

(3) उपरोक्त नियम के आधार पर कार्मिक को नियुक्ति के एक वर्ष के भीतर 30 शब्द प्रति मिनट की गति से टाइपराइटिंग की परीक्षा उत्तीर्ण करनी होती थी। चूंकि कर्मचारी टाइपराइटिंग में परीक्षा उत्तीर्ण करने में असमर्थ था, इसलिए उसकी नियुक्ति समय-समय पर तदर्थ आधार पर बढ़ा दी गई थी । उसने 14 सितंबर 1987, 8 फरवरी 1988, 19 अप्रैल 1988, 21 जून 1988, 19 अगस्त 1988, 17 अप्रैल 1989 और 23 अक्टूबर 1989 को परीक्षा दी। सात अवसर दिए जाने के बावजूद, कर्मकार परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर सकी । इससे पहले कि उसकी सेवाएँ समाप्त की जा सकें, कर्मचारी ने 28 नवंबर 1989 को CWP संख्या 15520/1989 दायर कर इस न्यायालय की डिवीजन बेंच द्वारा 1988 के CWP संख्या 72 में दिए गए फैसले के आधार पर सेवा को नियमित करने की मांग की। वर्तमान रिट याचिका में कर्मकार ने गुहार लगाई है कि उसे नियुक्ति पत्र दिनांक 19 नवंबर 1985 द्वारा छह महीने की अवधि के लिए तदर्थ आधार पर क्लर्क के रूप में नियुक्त किया गया था, जिसे एक या दो दिन का अवकाश देने के बाद बार-बार नियुक्ति पत्र देकर समय-समय पर बढ़ाया जाता था। उन्होंने 15 नवंबर 1885 से कुछ काल्पनिक अवकाश के साथ तदर्थ आधार पर विश्वविद्यालय में क्लर्क के रूप में सेवा की थी और चार साल से अधिक की सेवा पूरी की थी। यह आगे उसका मामला था कि विश्वविद्यालय एक उद्योग है और वह औद्योगिक विवाद अधिनियम (इसके बाद अधिनियम के रूप में संदर्भित) की धारा 2 (s) के अर्थ के तहत एक श्रमिक है। उसने आगे दावा किया था कि 240 दिन की सेवा पूरी होने पर, वह सेवा के नियमितीकरण की हकदार

है। उन्होंने चार साल की निरंतर सेवा के आधार पर अपनी सेवाओं के नियमितीकरण का भी दावा किया है। पैरा 6 में कर्मचारी ने गुहार लगाई थी कि उसे नियमितीकरण के दावे से वंचित करने के लिए तदर्थ आधार पर बार-बार नियुक्तियाँ दी गई हैं। उसने यह भी दावा किया था कि वह वार्षिक वेतन वृद्धि और अन्य लाभ पाने की हकदार है जो नियमित रूप से कार्यरत कर्मचारियों को दिए जाते हैं।

(4) इस रिट याचिका के जवाब में यूनिवर्सिटी ने जवाब दावा दाखिल किया था। पैरा 6 में यह कहा गया कि याचिकाकर्ता (वर्तमान मामले में कामगार) सात मौकों पर टाइप टेस्ट में उपस्थित हुई। चूंकि वह टाइप टेस्ट में उत्तीर्ण नहीं हो सकी, इसलिए वह विश्वविद्यालय कैलेंडर खंड III, 1993 की अनुसूची II में क्लर्क के पद के लिए निर्धारित न्यूनतम योग्यता पूरी नहीं करती है। इसके बाद, नियम को बिना किसी और टिप्पणी के पुन: प्रस्तुत किया गया है।

(5) 30 नवंबर 1989 को, इस न्यायालय ने निम्नलिखित आदेश पारित किया:

"1989 का CWP नंबर 15520

उपस्थित: श्री दिनेश कुमार, अधिवक्ता

28 फरवरी 1990 के प्रस्ताव की सूचना। अगले आदेश तक याचिकाकर्ता की सेवाओं के संबंध में यथास्थिति।

Sd/- आई.एस. टिवाना

Sd/- ए.पी. चौधरी

न्यायाधीश

30 नवंबर, 1989

(6) जवाब दावा दाखिल करने के बाद, रिट याचिका 28 फरवरी 1990 को निम्नलिखित आदेश द्वारा खारिज कर दी गई:

"1989 का CWP नंबर 15520

श्री दिनेश कुमार, अधिवक्ता। श्री

जे.एल. गुप्ता वरिष्ठ अधिवक्ता के साथ श्री वाई.एस. बंगा, अधिवक्ता

जवाब दावा के पैरा 6 के दृष्टिगत खारिज किया गया।

Sd/- आई.एस. टिवाना

Sd/- जी.आर. मजीठिया

न्यायाधीश

फ़रवरी 28, 1990

(7) रिट याचिका खारिज होने के बाद, 8 मार्च 1990 को कर्मचारी की सेवाएं समाप्त कर दी गईं। इसलिए, उसने याचिकाकर्ता को एक मांग नोटिस दिया और हरियाणा के राज्यपाल ने औद्योगिक विवाद को सरकारी अधिसूचना संख्या 18816, दिनांक 30 मई 1991 द्वारा अधिनियम की धारा 10(1)(c) के तहत संदर्भित किया, निम्नानुसार है:

"क्या श्रीमती कुसुम मल्होत्रा की सेवाएँ समाप्त करना वैध और न्यायसंगत हैं, यदि ऐसा नहीं है, तो वह किस राहत की हकदार हैं।"

(8) दलील पूरी होने के बाद, श्रम न्यायालय , अंबाला ने निम्नलिखित मुद्दे तय किए-

(1) संदर्भ के अनुसार? OP

(2) क्या संदर्भ कानून की नजर में बुरा है क्योंकि पार्टियों के बीच कार्यकर्ता और प्रबंधन का कोई संबंध नहीं था? OPM

(3) क्या कोई औद्योगिक विवाद नहीं है, अत: संदर्भ कायम रखने योग्य नहीं है? OPM

(4) राहत?

(9) श्रम न्यायालय ने मुद्दे 1 और 3 को संयुक्त रूप से निर्णय के लिए लिया है। संतोष गुप्ता बनाम स्टेट बैंक ऑफ पटियाला[1] के मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले के आधार पर यह तर्क दिया गया कि प्रतिवादी नंबर 2 को 9 नवंबर 1985 को क्लर्क के रूप में नियुक्त किया गया था। उसकी सेवाएं 8 मार्च 1990 को अचानक समाप्त कर दी गईं। वह पहले ही 240 दिन से अधिक समय की निरंतर सेवा पूरा कर चुकी थी। इस आधार पर उसकी सेवाओं को समाप्त करना कि वह टाइप टेस्ट उत्तीर्ण नहीं कर सकी, छंटनी के समान है। आगे यह तर्क दिया गया कि प्रतिवादी नंबर 2 औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 2(s) के तहत परिभाषित एक कर्मकार थी। प्रबंधन एक उद्योग है। अत: धारा 25-F के प्रावधानों का पालन किये बिना कर्मकार की सेवा समाप्ति प्रारम्भ से ही शून्य है। प्रबंधन की ओर से दलील दी गई कि अधिनियम की धारा 25-F लागू नहीं है क्योंकि यह छंटनी का मामला नहीं है। यह तर्क दिया गया कि नियुक्ति पत्र में, यह विशेष रूप से उल्लेख किया गया है कि कार्यकर्ता की नियुक्ति छह महीने की अवधि के लिए थी और उसके काम की अंतिम तिथि 2 दिसंबर 1989 थी। नियुक्ति पत्र नियुक्ति का एक समझौता है और यह एक निश्चित अवधि के लिए है, धारा 25-एफ का कोई उल्लंघन नहीं है। आगे यह तर्क दिया गया कि धारा 2(oo) (b) के मद्देनजर, कामगार औद्योगिक विवाद अधिनियम के संरक्षण का हकदार नहीं था क्योंकि यह एक निश्चित

[1] 1980 Lab I.C. 687

अवधि के लिए रोजगार का अनुबंध था। यह भी तर्क दिया गया कि कर्मकार की नियुक्ति एक निश्चित अवधि के लिए विशिष्ट शर्त के साथ थी कि उसे टाइप टेस्ट उत्तीर्ण करना होगा, अन्यथा उसकी सेवाएं समाप्त कर दी जाएंगी। आगे यह भी तर्क दिया गया कि विश्वविद्यालय कोई उद्योग नहीं है। अत: कर्मकार द्वारा कोई औद्योगिक विवाद नहीं उठाया जा सकता। इसके अलावा, यह तर्क दिया गया कि विश्वविद्यालय के अपने नियम हैं और इन वैधानिक नियमों के सामने, श्रम न्यायालय का कोई क्षेत्राधिकार नहीं है क्योंकि औद्योगिक विवाद अधिनियम के प्रावधान लागू नहीं होंगे। पक्षों के विद्वान वकील द्वारा दी गई दलीलों पर विचार करने के बाद, श्रम न्यायालय ने उठाए गए प्रत्येक मुद्दे पर अपना निष्कर्ष दिया है। सुमेर चंद बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, अंबाला और अन्य[2] के मामले में इस न्यायालय की खंड पीठ के निर्णय पर भरोसा करते हुए श्रम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि विश्वविद्यालय एक "उद्योग" है। श्रम न्यायालय द्वारा यह माना गया है कि विश्वविद्यालय मानवीय इच्छाओं और जरूरतों को पूरा करते हुए समाज को सेवा प्रदान कर रहा है। यह भी माना गया है कि चूंकि किसी विश्वविद्यालय के कर्मचारी को प्रशासनिक न्यायाधिकरण अधिनियम के प्रावधानों के तहत प्रशासनिक न्यायाधिकरण से संपर्क करने का कोई अधिकार नहीं है , इसलिए वैधानिक सेवा नियम औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत श्रमिक न्यायालय का दरवाजा खटखटाने में बाधा नहीं बनेंगे। यह माना गया है कि विश्वविद्यालय के कर्मचारी किसी भी सिविल पद पर नहीं हैं क्योंकि सिविल सेवा नियमों के प्रावधान उन पर लागू नहीं

[2] 1990 (1) RSJ 283

होते हैं। इसके बाद, श्रम न्यायालय ने प्रबंधन के इस तर्क पर विचार किया कि श्रमिक को एक निश्चित अवधि के लिए नियुक्त किया गया था और उसे निर्धारित अवधि के भीतर परीक्षा उत्तीर्ण करनी थी । इस याचिका को शिमला देवी बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, भटिंडा[3], मामले में इस न्यायालय के एक निर्णय के आधार पर फिर से खारिज कर दिया गया था, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि नियुक्ति की नियत अवधि की समाप्ति पर स्वतः समाप्ति की याचिका को तब तक कायम नहीं रखा जा सकता जब तक कि यह सुसंगत अभिलेख प्रस्तुत करके साबित नहीं किया जाता है कि कामगार को किसी विशिष्ट कार्य को करने के लिए नियुक्त किया गया था और उस कार्य के पूरा होने पर उनकी सेवाएं समाप्त हो गई हैं। श्रम न्यायालय ने इस आशय का तथ्यात्मक निष्कर्ष दिया कि यह दिखाने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि काम बंद हो गया था । यह भी माना गया है कि प्रबंधन को यह स्थापित करने की आवश्यकता थी कि जिस कार्य के लिए आवेदक को नियुक्त किया गया था, वह अस्तित्व में नहीं था और नियुक्ति के विस्तार के लिए ऐसा कोई अन्य कार्य उपलब्ध नहीं था। इसलिए, यह माना गया है कि नियोक्ता द्वारा धारा 2(oo)(b) की सुरक्षा का दावा नहीं किया जा सकता है। इसके बाद, श्रम न्यायालय ने घटनाओं के अनुक्रम की सावधानीपूर्वक जांच की और नोटिस किया कि काल्पनिक ब्रेक के साथ कामगार की नियुक्ति कुछ और नहीं बल्कि प्रबंधन द्वारा शक्ति का एक रंगीन प्रयोग है जिसे उसकी ओर से सद्भावना का कार्य नहीं माना जा सकता है। श्रम न्यायालय के समक्ष यह भी तर्क दिया गया कि अंतिम नियुक्ति

[3] 1998 (2) SCT 73

पत्र, दिनांक 22 अगस्त 1989 में उल्लेख किया गया है कि कर्मचारी को छह महीने की अवधि के लिए नियुक्ति की पेशकश की गई थी। यह भी उल्लेख किया गया था कि उसे 30 शब्द प्रति मिनट की गति से परीक्षा उत्तीर्ण करने की आवश्यकता थी, ऐसा न करने पर उसकी सेवाएं समाप्त कर दी जाएंगी। यह पत्र श्रम न्यायालय में Ex. A-34 के रूप में प्रस्तुत किया गया था। उसी के अवलोकन से, श्रम न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला है कि उपरोक्त पत्र 1989 के CWP संख्या 15520 में निर्णय के अनुसरण में जारी किया गया है। इस पत्र में, यह उल्लेख नहीं किया गया है कि कार्यकर्ता की सेवाएं समाप्त की जा रही हैं क्योंकि वह टाइप टेस्ट उत्तीर्ण करने में विफल रही थी। बल्कि उस रिट याचिका जो उसने अपनी सेवाओं को नियमित करने का दावा करते हुए दायर की थी, को खारिज करने के मद्देनजर कर्मचारी की सेवाएं समाप्त कर दी गईं। श्रम न्यायालय ने आगे कहा कि भले ही वह टाइपिंग टेस्ट उत्तीर्ण करने में विफल रही हो, लेकिन औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25-F के प्रावधानों का अनुपालन किए बिना श्रमिक गणना की सेवाएं समाप्त नहीं की जाएंगी । श्रम न्यायालय संतोष गुप्ता बनाम स्टेट बैंक ऑफ पटियाला (सुप्रा के अनुसार) के मामले पर निर्भर करता है। उस मामले में भी कामगार ने वह परीक्षा उत्तीर्ण नहीं की थी जो उसे पुष्टि करने में सक्षम बनाती जब यहां सेवाओं को औद्योगिक विवाद अधिनियम के प्रावधानों का अनुपालन के बिना समाप्त कर दिया गया था। यह माना गया कि यह अवैध छंटनी है। चूँकि वर्तमान मामले में, प्रबंधन ने अधिनियम की धारा 25-F का अनुपालन नहीं किया था, कर्मचारी की सेवाओं की समाप्ति शुरू से ही शून्य थी। उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर, मुद्दे (1) और (3) कर्मचारी के

विरुद्ध तय किए गए। मुद्दे संख्या 1 और 3 पर उपरोक्त निष्कर्षों को ध्यान में रखते हुए, श्रम न्यायालय ने मुद्दा संख्या 2 को भी कामगार के पक्ष में इस आशय से तय किया कि पार्टियों के बीच नियोक्ता और कर्मचारी का संबंध मौजूद था।

(10) विश्वविद्यालय की ओर से उपस्थित श्री सिब्बल ने उन दलीलों को दोहराया जो श्रम न्यायालय के समक्ष दी गई थीं । श्री सिब्बल ने प्रस्तुत किया कि श्रम न्यायालय के पास संदर्भ पर विचार करने का कोई अधिकारक्षेत्र नहीं था क्योंकि कामगार ने 1989 की CWP संख्या 15520 दाखिल करके अपना उपाय चुना था। उस रिट याचिका में, समान मुद्दे उठाए गए थे, और इसलिए, कामगार श्रम न्यायालय से संपर्क नहीं कर सकता था । इस दलील के समर्थन में, विद्वान वरिष्ठ वकील ने तेजा सिंह बनाम केंद्र शासित प्रदेश चंडीगढ़[4] के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले पर भरोसा किया । उपरोक्त निर्णय के पैरा में 27 में इसे इस प्रकार माना गया है:

"27(3). जब किसी रिट याचिका को स्पीकिंग ऑर्डर पारित करके प्रतियोगिता के बाद खारिज कर दिया जाता है, तो ऐसा निर्णय किसी अन्य कार्यवाही जैसे कि मुकदमे, अनुच्छेद 32 के तहत एक याचिका आदि में रेस जुडिकाटा के रूप में कार्य करेगा।"

(11) मुझे विद्वान वरिष्ठ वकील द्वारा दी गई दलील को स्वीकार करना कठिन लगता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि रिट याचिका के पैराग्राफ 4 और 5 में बैंगलोर जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड बनाम राजप्पा और अन्य[5] के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के फैसले

---

[4] [AIR 1982 P.&H. 169].

[5] AIR 1978 SC 548

पर निर्भर करते हुए कर्मचारी ने कहा था कि विश्वविद्यालय एक उद्योग है। उन्होंने पैरा 5 में भी कहा था कि वह अधिनियम की धारा 2(s) के तहत परिभाषित एक कर्मकार है। लेकिन रिट याचिका का मुख्य जोर 1988 के CWP नंबर 72 में इस न्यायालय की एक डिवीजन बेंच द्वारा दिए गए फैसले के आधार पर नियमितीकरण की मांग करना था। नियमितीकरण के इस दावे को खारिज कर दिया गया और उनके द्वारा दायर रिट याचिका खारिज कर दी गई। 28 फरवरी 1990 के आदेश को देखने से पता चलता है कि जवाब दावे के पैरा 6 के मद्देनजर रिट खारिज कर दी गई थी। जैसा कि पैरा 6 में पहले देखा गया था प्रतिवादी - विश्वविद्यालय ने केवल यह कहा है कि कर्मकार की सेवाओं को नियमित नहीं किया जा सकता क्योंकि वह सात अवसरों में टाइपिंग परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर सकी। यह भी कहा गया था कि कर्मचारी विश्वविद्यालय कैलेंडर खंड III, 1984 की अनुसूची II के तहत निर्धारित क्लर्क के पद के लिए न्यूनतम योग्यता को पूरा नहीं करती है। नियमों को देखने से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि नियमित रूप से भर्ती किए गए क्लर्कों को भी एक वर्ष की अवधि के भीतर कम से कम 30 शब्द प्रति मिनट की गति से टाइपराइटिंग में परीक्षा उत्तीर्ण करना आवश्यक है, ऐसा न करने पर वे टाइपिंग टेस्ट में उत्तीर्ण होने तक पुष्टिकरण के पात्र नहीं होंगे। । तदर्थ नियुक्तियों के लिए, यह प्रावधान किया गया है कि उन्हें एक वर्ष के भीतर परीक्षा उत्तीर्ण करनी होगी, ऐसा न करने पर वे टाइपिंग परीक्षा में उत्तीर्ण होने तक नियमित आधार पर नियुक्ति के लिए पात्र नहीं होंगे। तदर्थ नियुक्तियों पर लागू नियमों के प्रोवाइज़ो के साथ 28 फरवरी 1980 को डिवीजन बेंच द्वारा पारित आदेश का अवलोकन स्पष्ट रूप से दिखाएगा कि रिट याचिका इस

आधार पर खारिज कर दी गई थी कि कामगार (याचिकाकर्ता) टाइपिंग टेस्ट उत्तीर्ण करने में असफल रहा था। इसलिए, यह माना गया कि वह नियमितीकरण की राहत की हकदार नहीं थी। जिस समय कामगार (याचिकाकर्ता) ने उपरोक्त रिट याचिका दायर की थी, उस समय उसकी सेवा समाप्त नहीं की गई थी। उसने विशेष रूप से अनुरोध किया है कि प्रतिवादी- विश्वविद्यालय ने तदर्थ कर्मचारियों की सेवाओं को समाप्त करने के लिए कुछ गुप्त निर्णय लिया है और ऐसी परिस्थितियों में, याचिकाकर्ता को उचित आशंका है कि किसी भी समय उसकी सेवाएं प्रतिवादी- विश्वविद्यालय द्वारा समाप्त की जा सकती हैं। आगे यह कहा गया कि रिट याचिका दायर होने तक वह सेवा में बनी हुई थी और उसे कोई समाप्ति आदेश पारित नहीं किया गया था या उसे तामील नहीं किया गया था। इसलिए, जब 8 मार्च 1990 के आदेश द्वारा उनकी सेवाएं समाप्त कर दी गईं, तो उनके पक्ष में कार्रवाई का एक बिल्कुल नया कारण सामने आया। किसी भी स्थिति में, 1988 के CWP संख्या 72 में दिए गए फैसले के आधार पर रिट याचिका सेवा के नियमितीकरण के संबंध में याचिकाकर्ता-कर्मचारी के प्रतिबंधित दावे से निपटती है। इसलिए, यह अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि रिट याचिका को खारिज करना औद्योगिक विवाद अधिनियम के तहत संदर्भ में दावा करने में कामगार के खिलाफ रेस जुडिकाटा के रूप में संचालित होता है।

(12) श्री सिब्बल ने तब तर्क दिया था कि वर्तमान मामले में औद्योगिक विवाद अधिनियम लागू नहीं होता है क्योंकि विश्वविद्यालय उद्योग नहीं है। आगे यह तर्क दिया गया कि प्रतिवादी नंबर 2 अधिनियम की धारा 2(s) के तहत परिभाषित कर्मकार नहीं था। मैं इस निवेदन को भी स्वीकार करने में असमर्थ हूं। मेरी

सुविचारित राय है कि यह कहने में बहुत देर हो चुकी है कि विश्वविद्यालय एक उद्योग नहीं है या प्रतिवादी नंबर 2, भले ही क्लर्क के पद पर काम कर रहा हो, अधिनियम की धारा 2(s) के तहत "कर्मचारी" की परिभाषा में नहीं आएगा। सुमेर चंद बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय, अम बाला (उपर्युक्त) के मामले में दिए गए इस न्यायालय के खंड पीठ के निर्णय को ध्यान में रखते हुए याचिकाकर्ता के उद्योग होने के संबंध में मामला अब एकीकृत नहीं है। उपरोक्त निर्णय के पैरा 5 और 6 में इस प्रकार माना गया है:

"5. मिस ए सुदरामबाई के मामले में (उपरोक्त), यह देखा गया कि एक शैक्षणिक संस्थान एक उद्योग था। यह संभव था कि उस उद्योग के कुछ कर्मचारी कामगार न हों। वहां यह देखा गया कि माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विचार कि दिल्ली विश्वविद्यालय एक उद्योग नहीं था, को बैंगलोर जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड मामले (सुप्रा) में स्पष्ट रूप से खारिज कर दिया गया था।

6. ऊपर उद्धृत मामलों में सर्वोच्च न्यायालय के लॉर्डशिप द्वारा निर्धारित आदेश के मद्देनजर, मेरा मानना है कि विश्वविद्यालय एक उद्योग है और याचिकाकर्ता एक श्रमिक था जैसा कि औद्योगिक विवाद अधिनियम द्वारा परिकल्पित किया गया था और श्रम न्यायालय के पीठासीन अधिकारी के पास विवाद का निर्णय करने का अधिकार क्षेत्र था। इस प्रकार, प्राधिकरण का यह निष्कर्ष खारिज किया जाता है कि उसके पास विवाद की सुनवाई का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है।"

(13) श्री सिब्बल ने तब तर्क दिया था कि औद्योगिक विवाद अधिनियम वर्तमान मामले में लागू नहीं होगा क्योंकि प्रतिवादी-

कर्मचारी की सेवा शर्त वैधानिक सेवा नियमों द्वारा शासित होती है। इस निवेदन के समर्थन में, श्री सिब्बल ने बॉम्बे टेलीफोन कैंटीन कर्मचारी संघ, प्रभादेवी टेलीफोन एक्सचेंज बनाम भारत संघ[6] के मामले में उच्चतम न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा किया है, यह निर्णय का याचिकाकर्ता के लिए कोई लाभ नहीं है क्योंकि बाद में महाप्रबंधक, दूरसंचार बनाम एस. श्रीनिवास[7] के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने विशेष रूप से इसे खारिज कर दिया। श्रम न्यायालय ने फिजिकल रिसर्च लेबोरेटरी बनाम के.जी. शर्मा[8] के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा दिए गए फैसले को सही अलग किया। उस मामले में, यह माना गया था कि यह किसी का मामला नहीं है कि पी. आर. एल. एक ऐसी गतिविधि में लगी हुई है जिसे व्यवसाय, व्यापार या निर्माण कहा जा सकता है। वर्तमान मामले में, मामला पूरी तरह से बैंगलोर जल आपूर्ति और सीवरेज बोर्ड के मामले (उपर्युक्त) में दी गई "उद्योग" की परिभाषा के भीतर आता है जिसमें यह स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया गया है कि व्यवसाय क्लब, शिक्षा संस्थानों को धारा 2 (जे) के दायरे से बाहर नहीं किया जा सकता है यदि वे उसमें निर्धारित ट्रिपल परीक्षणों को पूरा करते हैं। यह तय करने के लिए कि प्रतिष्ठान एक "उद्योग" है या नहीं, प्रमुख प्रकृति परीक्षण न्यायमूर्ति श्री कृष्ण अय्यर के निर्णय के पैरा 161 (IV) में संक्षेप में दिया गया है जो इस प्रकार है:

“(a) जहां क्रियाकलापों के एक समूह, जिनमें से कुछ में छूट की गुणवत्ता है, अन्य में नहीं, कुल उपक्रम पर कर्मचारी शामिल हैं, जिनमें से कुछ दिल्ली विश्वविद्यालय के मामले (उपर्युक्त) की तरह 'कामगार'

[6] 1997(3) SCT 498
[7] 1998(1) SCT 230
[8] 1997 (2) SCT 492

नहीं हैं या कुछ विभाग वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादक नहीं हैं यदि अलग-थलग हैं, तो भी, सेवाओं की प्रमुख प्रकृति और विभागों की एकीकृत प्रकृति जैसा कि नागपुर निगम (उपर्युक्त) में समझाया गया है, सही परीक्षा होगी। पूरा उपक्रम उद्योग होगा, हालांकि जो लोग परिभाषा के अनुसार कामगार नहीं हैं, वे स्थिति से लाभान्वित नहीं हो सकते हैं।

(b) पिछले खंडों के बावजूद, कड़ाई से समझे संप्रभु कार्य, (अकेले) छूट के लिए पात्र हैं, न कि सरकार या वैधानिक निकायों द्वारा की गई कल्याणकारी गतिविधियाँ या आर्थिक साहसिक कार्य।

(c) यहां तक कि संप्रभु कार्यों का निर्वहन करने वाले विभागों में भी, यदि ऐसी इकाइयां हैं जो उद्योग हैं और वे काफी हद तक अलग करने योग्य हैं तो उन्हें धारा 2 (j) के भीतर आने पर विचार किया जा सकता है।

(d) संवैधानिक और सक्षम रूप से अधिनियमित विधायी प्रावधान अधिनियम श्रेणियों के दायरे से दूर हो सकते हैं, जिन्हें अन्यथा इसके द्वारा कवर किया जा सकता है।"

(14) इन परीक्षणों का विश्लेषण करते हुए, सुमेर चंद मामले (सुप्रा के अनुसार) में इस न्यायालय की एक खंडपीठ ने इसी विश्वविद्यालय को एक "उद्योग" माना है। श्री सिब्बल ने उपरोक्त निर्णय के अनुपात को यह कहकर कम करने की कोशिश की कि यह माली और चौकीदार जैसे छोटे श्रमिकों तक ही सीमित था। मैं फैसले के अनुपात में ऐसी किसी सीमा को समझने में असमर्थ हूं। मेरी सुविचारित राय है कि श्रम न्यायालय ने सही निर्णय लिया है कि विश्वविद्यालय एक उद्योग है और प्रतिवादी-कर्मचारी अधिनियम

की धारा 2(s) में दी गई "कर्मचारी" की परिभाषा के अंतर्गत आता है।

(15) इसके बाद श्री सिब्बल ने तर्क दिया कि अधिनियम की धारा 2(oo)(bb) के मद्देनजर, श्रमिक को औद्योगिक विवाद अधिनियम का संरक्षण नहीं दिया जा सकता क्योंकि उसे एक निश्चित अवधि के लिए नियुक्त किया गया था और उसकी सेवाएं अनुबंध के तदनुसार समाप्त कर दी गई थीं। प्रस्तुतीकरण के समर्थन में, विद्वान वरिष्ठ वकील ने पानीपत थर्मल पावर प्रोजेक्ट स्टेशन बनाम हरियाणा राज्य[9] के मामले में इस न्यायालय के फैसले पर भरोसा किया है । मैं विद्वान वरिष्ठ वकील की इस दलील को भी स्वीकार करने में असमर्थ हूं। पानीपत थर्मल पावर प्रोजेक्ट स्टेशन मामले में (सुप्रा के अनुसार), उच्च न्यायालय उस मामले से निपट रहा था जहां अनुबंध में निहित शर्त के तहत सेवाएं समाप्त कर दी गई थीं। किसी भी परीक्षा में असफल होने के कारण कर्मचारी की सेवाएँ समाप्त नहीं की गई हैं। वर्तमान मामले में, यह साबित हो गया है कि प्रतिवादी नंबर 2 कर्मचारी को तदर्थ आधार पर बार-बार नियुक्तियाँ दी गई थीं। इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, श्रम न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि विश्वविद्यालय ने अनुचित कार्य किया है। यह पाया गया कि कर्मचारी की सेवाएँ सद्भावनापूर्वक समाप्त नहीं की गई थीं। यह भी पाया गया है कि उनकी नियुक्ति केवल किसी खास काम के लिए नहीं की गयी थी। मेरे विचार में, श्रम न्यायालय ने शिमला देवी (सुप्रा के अनुसार) मामले में इस न्यायालय के फैसले पर सही भरोसा किया , जहां यह अभिनिर्धारित किया गया है कि नियोक्ता

[9] 1995 (4) RSJ 75

द्वारा रोजगार के अनुबंध में सेवा समाप्त करने या अनुबंध के नवीकरण न करने के अधिकार का केवल एक सही प्रयोग ही खंड (bb) द्वारा कवर किया जाएगा। यदि न्यायालय यह पाता है कि नियोक्ता द्वारा अधिकारों का प्रयोग सही नहीं है या नियोक्ता ने कामगार के अधिकारों को विफल करने के लिए एक माध्यम या तंत्र के रूप में निश्चित अवधि के रोजगार की पद्धति को अपनाया है, तो सेवा की समाप्ति खंड (bb) में निहित अपवाद द्वारा कवर नहीं की जाएगी। इसके बजाय नियोक्ता की कार्रवाई को अनुचित श्रम अभ्यास का कार्य माना जाएगा, जैसा कि अधिनियम की पांचवीं अनुसूची में निर्दिष्ट है। मेरी सुविचारित राय है कि प्रतिवादी-कर्मचारी के साथ उचित व्यवहार नहीं किया गया है। ऊपर दिए गए वैधानिक नियम परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए कोई समय सीमा प्रदान नहीं करते हैं। यह अधिकतम अवसरों की संख्या भी प्रदान नहीं करता है जिसके भीतर नियुक्त व्यक्ति को टाइपिंग टेस्ट पास करना होगा। यदि कोई व्यक्ति परीक्षा उत्तीर्ण नहीं कर पाता है, तो परिणाम केवल यह होगा कि कर्मचारी की सेवाओं को तब तक नियमित नहीं किया जाएगा जब तक कि वह टाइपिंग परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो जाता। इसलिए, इस प्रावधान का उपयोग कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त करने के लिए नहीं किया जा सकता है। उपरोक्त के अवलोकन से पता चलता है कि कामगार- प्रतिवादी संख्या 2 का मामला संतोष गुप्ता (सुप्रा के अनुसार) के मामले में सुप्रीम कोर्ट द्वारा निर्धारित कानून के अंतर्गत आता है। उस मामले में, कर्मचारी की सेवाएँ उस परीक्षा में उत्तीर्ण न होने के कारण समाप्त कर दी गईं, जिससे उसे सेवा में स्थायी किया जा सकता था। इसलिए, प्रबंधन द्वारा यह तर्क दिया गया था कि समाप्ति औद्योगिक विवाद अधिनियम की

धारा 2(oo) के अर्थ के तहत छंटनी नहीं है। पूरे मामले पर चर्चा के बाद यह माना गया कि टाइपिंग टेस्ट पास नहीं करने के आधार पर कर्मचारी को नौकरी से बर्खास्त करना धारा 2(oo) के तहत छंटनी है। परीक्षा उत्तीर्ण करने में विफलता केवल उसे पुष्टिकरण से वंचित कर सकती है। इससे सेवा समाप्त नहीं की जा सकती। इसलिए, धारा 25-F की आवश्यकताओं का अनुपालन करना होगा।

(16) श्री रैना ने इस न्यायालय के ध्यान में 16 मार्च 1991 का एक आदेश लाया है, जो अनुलग्नक R2/1 के रूप में जवाब दावे के साथ संलग्न है जिससे कुलपति ने 20 अप्रैल 1988 को नियुक्त 17 क्लर्कों पर लगाई गई योग्यता परीक्षा की शर्तों को शुरू से ही वापस लेने की कृपा की है। यह आदेश स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि परीक्षा उत्तीर्ण करने की शर्त में छूट दी जा सकती है । 20 अप्रैल 1988 को नियुक्त 17 क्लर्कों के मामले में छूट की शक्ति का प्रयोग किया गया है। प्रतिवादी संख्या 2 के मामले में इसका प्रयोग नहीं किया गया है। याचिकाकर्ता की यह कार्रवाई स्पष्ट रूप से दर्शाती है कि कर्मकार-प्रतिवादी संख्या 2 को शत्रुतापूर्ण भेदभाव का शिकार होना पड़ा। इसलिए, श्री सिब्बल की इस दलील को स्वीकार करना संभव नहीं होगा कि प्रबंधन अधिनियम की धारा 2(oo)(bb) के तहत सुरक्षा का हकदार है, जो उन मामलों में लागू होता है जहां रोजगार समय के प्रवाह के अंत में समाप्त हो जाता है। स्पष्टतः, कार्मिक की सेवाएँ इस आधार पर समाप्त कर दी गई हैं कि वह टाइपिंग टेस्ट उत्तीर्ण नहीं कर पाई थी, जबकि उसे सात मौके दिए गए थे। टाइपिंग टेस्ट में उत्तीर्ण न होने के कारण सेवाओं को समाप्त करना छंटनी के समान है। माना जाता है कि अधिनियम की धारा 25-F के प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया है। इसलिए, उसकी

सेवाओं की समाप्ति प्रारंभ से ही अमान्य है। श्री सिब्बल ने अंततः तर्क दिया कि किसी भी स्थिति में श्रम न्यायालय ने मांग नोटिस की तारीख से बहाली तक सेवा की निरंतरता और बकाया वेतन के साथ बहाली की राहत देने में गलती की है। मैं उपरोक्त कथन से सहमत नहीं हो पा रहा हूँ। 1989 के सीडब्ल्यूपी नंबर 15520 की बर्खास्तगी को कर्मचारी की सेवाओं को समाप्त करने के लीवर के रूप में गलत तरीके से उपयोग करके प्रबंधन ने उसे लगभग 11 वर्षों की अवधि के लिए मुकदमेबाजी में डाल दिया है। प्रतिवादी-कर्मचारी पर लागू नियमों पर प्रबंधन द्वारा की गई व्याख्या स्पष्ट रूप से गलत थी, इसलिए, यह माना जाना चाहिए कि श्रमिक-प्रतिवादी नंबर 2 अपनी नौकरी से बाहर रखे जाने के लिए बिल्कुल भी जिम्मेदार नहीं थी। यह कानून का एक सुस्थापित प्रस्ताव है कि औद्योगिक विवाद अधिनियम की धारा 25-F का अनुपालन न करने से छंटनी शुरू से ही शून्य हो जाती है। यह भी तय है कि बहाली पर आम तौर पर कामगार पूरा बकाया वेतन पाने का हकदार होता है। सामान्य नियम से हटने की इच्छा रखने वाले किसी भी पक्ष को प्रस्थान का औचित्य बताना होगा। इस प्रस्ताव का निपटारा हरि पैलेस, अंबाला शहर बनाम पीठासीन अधिकारी, श्रम न्यायालय और अन्य[10] के मामले में इस न्यायालय की पूर्ण पीठ के फैसले से किया गया है। उपरोक्त मामले में, यह निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया हैः -:

"6 हालाँकि, अब ऐसा लगता है कि मैसर्स हिंदुस्तान टिन वर्क्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम हिंदुस्तान टिन वर्क्स (प्राइवेट), लिमिटेड के कर्मचारी, में सुप्रीम कोर्ट के लॉर्डशिप्स द्वारा सभी विवादों को शांत

[10] PLR Vol. LXXXI—1979 720

कर दिया गया है जिसमें विशेष अनुमति द्वारा अपील स्पष्ट रूप से बकाया वेतन के अनुदान के प्रश्न तक सीमित थी। यह उसमें अनिश्चित शर्तों पर आयोजित किया गया है:

"सामान्य तौर पर, इसलिए, एक कर्मचारी जिसकी सेवा को अवैध रूप से समाप्त कर दिया गया है, वह पूर्ण वेतन का हकदार होगा, सिवाय उस सीमा के जब वह जबरन आलस्य के दौरान लाभकारी रूप से कार्यरत था। यही सामान्य नियम है। कोई अन्य दृष्टिकोण नियोक्ता की अनुचित मुकदमेबाजी गतिविधि पर एक प्रीमियम होगा।"

और फिर:

"पूर्ण बकाया वेतन सामान्य नियम होगा और इस पर आपत्ति करने वाली पार्टी को उन परिस्थितियों को स्थापित करना होगा जिनके लिए प्रस्थान की आवश्यकता है"

उपरोक्त दृष्टिकोण जी.टी. लाड बनाम केमिकल्स एंड फाइबर्स इंडिया , लिमिटेड में लॉर्डशिप्स द्वारा दोहराया गया है ।"

(17) उपरोक्त को ध्यान में रखते हुए, मुझे श्री सिब्बल की इस दलील में भी कोई योग्यता नहीं दिखती।

(18) यह कानून का निश्चित प्रस्ताव है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन रिट अधिकारिता का प्रयोग करते हुए, श्रम न्यायालय/औद्योगिक अधिकरण द्वारा दिए गए अधिनिर्णय पर, यह न्यायालय अपील न्यायालय के रूप में नहीं बैठेगा। रिट अधिकारिता का प्रयोग करते समय, यह न्यायालय उस पुरस्कार में हस्तक्षेप करना उचित होगा जो अभिलेख के सामने स्पष्ट त्रुटि से ग्रस्त है। यदि श्रम न्यायालय द्वारा प्रस्तुत निष्कर्ष बिना किसी

साक्ष्य के आधारित हैं तो पुरस्कार में हस्तक्षेप करना भी उचित होगा। यदि तथ्यों के निष्कर्ष अभिलेख के सामने विकृत प्रतीत होते हैं तो पुरस्कार में हस्तक्षेप करना भी उचित होगा। यह न्यायालय केवल इस आधार पर अधिनिर्णय में हस्तक्षेप नहीं करेगा कि कुछ साक्ष्यों पर, श्रम न्यायालय द्वारा अभिलिखित दृष्टिकोण से अलग दृष्टिकोण देना संभव होगा। पूरे मामले पर विचार करने के बाद, इस न्यायालय का विचार है कि अभिलेख के सामने स्पष्ट रूप से कोई त्रुटि नहीं है।

(19) परिणामस्वरूप, यह रिट याचिका खारिज की जाती है। लागत के रूप में कोई ऑर्डर नहीं होगा।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

अंकिता गुप्ता
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
बिलासपुर,यमुनानगर

R.N.R.

इससे पहले जे.एस. नारंग, जे

ADHIYAMAAN शैक्षिक और अनुसंधान संस्थान
(REGISTERED TRUST) और & *ANOTHER — Peititoners*

बनाम

MAHARISHI DAYANAND विश्वविद्यालय, ROHTAK —

उत्तरदाता

सीडब्ल्यूपी नं. 2000 का 11321